

पक्षधरता के पक्ष में

□ प्रज्ञा जोशी

मैंने मेरा बचपन बंबई जैसे महानगर में बिताया है। समय यहां रत्तीभर नहीं रुकता। खेलने के लिए बच्चे जगह पाएं यह भी लगभग असंभव-सा प्रतीत होता है। सपने देखने के लिए कोई विराम नहीं मिलता - ऑफिस जाते हुए बड़े और स्कूल जाते हुए बच्चे यातायात में अपने इन विराम और विस्मयों को खोजते रहते हैं। ऐसे में किस्सागोई की फुरसत कहां ? आई-बाबा और आजी-अप्पा से कहानियों की मांग करना मुझे शर्मसार कर देता था। उनके पास समय था ही नहीं। ऐसे में सहेलियों और किताबों से ही किस्से आगे बढ़े। किताबें घर में आसानी से आ जाती थीं। मेरी सहेलियां इतनी खुशानसीब नहीं थीं। सिनेमा का भी यही हाल था। टीवी आ चुका था परंतु वह तब तक समय पर छाया हुआ नहीं था। महानगर होने के कारण फिल्मोत्सव और खासकर बाल फिल्मोत्सवों के आयोजन में हिस्सेदारी संभव थी। पर मुझे याद है ऐसे कई फिल्मोत्सवों में मैं अकेली शरीक होती थी। मेरी सहेलियां उससे कोसों दूर भागती थीं। यह चित्र एक मध्यम वर्गीय सवर्ण समाज का परिवेश है जहां बच्चे कहानियों के तौर पर पंचतंत्र, ईसपनीति, शिवाजी चरित्र, फास्टर फेणे, गोट्या, पुराणकथाएं सुनते हुए और व्यायाम शालाओं में जाकर बड़े होते थे। बच्चों पर विशेष ध्यान देना उस समय में शोषेबाजी मानी जाती थी।

यह समय-समय की बात है। आज उसी समाज का चित्र बदला हुआ है। बहुत नहीं परंतु थोड़ा-सा तो बदला ही है। रामानंद सोसायटी, विलेपार्ले (पूर्व) जहां मैंने बचपन बिताया वहां बच्चे

आज साथ मिलकर सिनेमा देखने भेजे जाते हैं। उनके माता-पिता उन्हें हैरी पॉटर पढ़ने देते हैं। बच्चे मांगते हुए शर्माते नहीं हैं। लड़के लड़कियां साथ खेलते हैं। फिर भी वहां लड़के रो नहीं पाते। लड़कियां अभी भी क्रिकेट नहीं खेल पाती हैं। साने गुरुजी के 'श्याम' को हिकारत से देखा जाता है क्योंकि 'श्याम' रोता है। श्याम मन को फूल जैसा कोमल रखने की कोशिश करता है। इन कारणों के साथ नई बात यह जुड़ी है कि श्याम 'व्हर्ना क्यूलर' है।

चलिए, हम क्या नहीं हुआ और क्यों नहीं हुआ इसकी चर्चा बाद में करेंगे पर जो सकारात्मक परिवर्तन है उनकी जड़ें ढूंढने की कोशिश करते हैं। इस परिवर्तन में बाल साहित्य - मराठी बाल साहित्य की भूमिका क्या रही इस पर थोड़ी बात करें। इस प्रक्रिया में मैं फिर से लौटना चाहूंगी, अपने बचपन में पढ़े बाल साहित्य पर।

गोट्या, फास्टर फेणे, अल्लादिन, अल्योस्का, चूक-गेक, अजबखाना, देनिस इन सभी के साथ मैंने श्याम की मां (श्यामची आई), बेबी सरोजा, गोप्या, मनु बाबा भी पढ़े थे। हमारे घर में साने गुरुजी का बाल साहित्य मानो हमारे साथ जुड़ा ही हुआ था। इसका कारण था कि साने गुरुजी राष्ट्र सेवा दल, आंतरभारती, कथामाला के प्रणेता थे और मेरे आजी - अप्पा, आई बाबा उनसे जुड़े हुए थे। दूसरी भी चीज जो मुझे उनसे जोड़ती थी वे पालगड, कोंकण के एक गांव से निकलकर अमलनेर यानी खानदेश (उत्तर महाराष्ट्र) के कस्बे में स्कूल मास्टर हो गए थे और अप्पा (दादाजी) भी पालगड के ही थे और वे भी भुसावल, खानदेश के कस्बे में



स्कूल मास्टर थे। सो साने गुरुजी का बाल साहित्य पढ़ना यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया थी। यहां गैर-मराठी लोगों को परिचय की आवश्यकता पड़ेगी। साने गुरुजी यानी पंढरीनाथ साने जिनके साथ 'गुरुजी' यह संबोधन अभिन्न रूप से जुड़ गया। हालांकि स्कूल के मास्टर के रूप में वे केवल 1928-30 के बीच अमलेनेर के खानदेश एज्युकेशन सोसायटी' (इस स्कूल का 1934 में नामकरण 'प्रताप हाई स्कूल' किया गया) में रहे परंतु इसके बाद सारे महाराष्ट्र के वे साने गुरु जी ही हो गए थे। मराठी के वे एकमात्र सत्याग्रही बाल साहित्यकार थे जिन्होंने लगभग 140 किताबें लिखीं जिसमें से अधिकतर बच्चों के लिए लिखी गई थीं।

वैसे मराठी साहित्य के स्वातंत्र्योत्तर समय में मराठी के मुख्यधारा के साहित्यकार ने बाल साहित्य को अपने साहित्य सृजन का हिस्सा माना। वि.दा. करंदीकर, मंगेश पाडगावकर, पु.ल. देशपांडे, रत्नाकर मतकरी, शांता शेल के जैसे लेखकों ने बच्चों के लिए खूब लिखा। मराठी में बड़बड़ गीत, नाटक, उपन्यास और कहानियों के माध्यम से बाल साहित्य की परंपरा आगे बढ़ी। आधुनिक साहित्य के गुण इसमें विकसित हुए। सरल अनालंकृत और प्रतीकों से मुक्त भाषा का प्रचलन बढ़ा। साने गुरुजी के साहित्य ने इन मानकों को बहुत पहले ही अपनाया। उनका साहित्य स्वप्नरंजक नहीं था बल्कि उस पर वास्तविकता की गहरी छाप थी। स्वप्नरंजन को उन्होंने आदर्शवाद से जोड़ने का प्रयास किया। उनकी कहानियां पढ़ते वक्त किस्सागोई शैली के कारण उनके पात्र सजीव हो उठते थे। उनके साहित्य में भावुकता का प्रवाह निरंतर रहा है। बच्चों के कोमल मन को कहानियों, नाटकों और उपन्यासों के माध्यम से मानवीय संबंधों और सामाजिक सरोकारों से रूबरू करारकर तरलता प्रदान करना यह उनके साहित्य का उद्देश्य था। उनके साहित्य के इस आयाम को विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों के दायरे में समझा जा सकता है।

साने गुरुजी ने अपना लेखन और मास्टरी लगभग साथ ही शुरू की। छात्रालय के अधीक्षक के नाते इस स्कूली मास्टर ने दैनिक छात्रालय शुरूआत की इस उद्देश्य से की कि छात्रों के साथ और छात्रों के बीच संवाद का पुल बांधा जा सके। वे लगातार महसूस करते थे कि बच्चों में पढ़ने की ललक नहीं है। इसका एक कारण तो यह था कि उनके रचनुसार कोई बाल साहित्य उनकी भाषा में था ही कम। उनकी दुनिया से गुजरता साहित्य उपलब्ध कराने के लिए शुरू हुआ दैनिक छात्रालय। इसमें कहानियां, नाटक, कविता, लेख आदि के अलावा बच्चों से जुड़ी दैनिक खबरें छपा करती थीं। सुबह चार बजे उठकर प्रार्थना के समय तक लिखकर

दैनिक छात्रालय, हस्तलिखित छात्रों तक पहुंचता जिसमें छात्रों के कमरों का वर्णन, उनके संवाद, झगड़े, घर के, गांव के किस्से, लोक कथाएं, इतिहास, भविष्य के सपने, छात्रों की खादी संबंधी सोच, बच्चों के खेल, उनका व्यवहार इन सबकी चर्चाएं दैनिक छात्रालय में होती थी। बच्चे पढ़ते नहीं हैं यह शिकायत करना आसान है पर उसके परिवर्तन के लिए किए गए ऐसे प्रयास विरले देखने को मिलते हैं। गुरुजी मानते थे कि बच्चे कलियों की तरह होते हैं, उन्हें कृत्रिम ढंग से खिलाने का प्रयत्न करेंगे तो अधूरापन ही हाथ लगेगा। फूलों का खिलना एक प्राकृतिक और अपना समय लेकर चलने वाली प्रक्रिया है जो पूरे पर्यावरण के अस्तित्व पर निर्भर है। वैसे ही बच्चों का विकास और खास कर पढ़ने की चाह इस पर निर्भर है कि उनके अन्य व्यवहार और गतिविधियों के तौर पर उनसे संवाद प्रस्थापित किया जा सका है कि नहीं? ऐसे संवाद की पहल गुरुजी ने अपने साहित्य द्वारा की। दैनिक छात्रालय में छपा वह वृत्तांत ही देखिए। स्कूल में दो विद्यार्थियों के सत्कार हेतु समारोह आयोजित किया गया। जिसे अध्यक्ष पद पर स्कूल में सार्वजनिक गतिविधियों में पहल करने वाले स्काउट मास्टर जठार सपत्नीक विराजमान हुए ताकि जिसके सामाजिकता का प्रसार श्री जठार करते हैं उसका विस्तार उनकी पत्नी तक भी हो और वे भी उन कामों का हिस्सा बनें। यह रहा एक विचार और समारोह के उत्सवमूर्ति वो दो छात्र थे जिन्होंने गंदे शौचालयों को साफ किया था। उनके काम के प्रोत्साहन में उन्हें दो किताबें और गांधीजी के फोटो लगे दो पदक भेंट किए गए। विद्यार्थियों को मानवता के सिपाही बनाने के लिए इस तरह दैनिक छात्रालय एक जरिया बना।

जब समाज पराधीनता की जड़ों में अटका हुआ है तब क्या बच्चों को समाज के यथार्थ से दूर रखा जा सकता है? जब स्वाधीनता आंदोलन अपने पूरे उफान पर हो तो बच्चों को परियों और तिलिस्म की दुनिया तक ही रखना उनके साथ प्रताड़ना ही कहलाती! नीतिमत्ता और कर्तव्य के उपदेशों से उनके आंखों पर पट्टियां चढ़ाने से अच्छा रास्ता यह था कि कहानियों उपन्यासों के जरिए उनकी दुनिया में झांककर संवाद का मार्ग प्रशस्त किया जाए। ताकि कर्तव्यबोध से दबने की बजाय परिस्थितियों को जांचने-परखने और बदलने की संवेदन क्षमता बच्चों के जेहन में उतरे। यह सोच लेकर अगर लेखक चलें तो उनको साहित्य सृजन में शिक्षक का स्थान छोड़कर बच्चों में शामिल होना पड़ेगा। अपने भावनावेग को मुक्त करना पड़ेगा। उसकी उपस्थिति उसके लिखे साहित्य में गुणों-अवगुणों, कुण्ठा-ग्रंथियों, अहम-अबोधता, चालाकी-सजगता समवेत दर्ज करानी होगी। 'श्यामची आई' (श्याम की मां)



और श्याम के इस आत्म पर उपन्यास के तीन खंड आए। इनके माध्यम से गुरुजी और श्याम लगभग पर्यायवाची बने। यह अभिन्नता उनकी सामाजिक गतिविधियों में रही भागीदारी में बिंबित होती रही। श्याम जीवन के हर अंग से ज्ञानार्जन करने के लिए उत्सुक था, भावुक, उतावला, संवेदनशील, अपने रिश्तों को लेकर अत्यंत पजेसिव था। गुरुजी का व्यक्तित्व भी इसी तरह से अत्यंत भावप्रवण था। यही कारण था कि विद्यार्थियों को अपने इस मास्टर को सत्याग्रही बनने के लिए आवश्यक सूत कताई सिखाने और उनके लिखे कहानी, उपन्यास, नाटक और गीतों से उनके उमंगों और मानवतावादी प्रेरणाओं को ग्रहण करने में कोई दिक्कत महसूस नहीं हुई। गुरुजी के साहित्य ने न जाने कितने सत्याग्रही तैयार किए। यह अत्यंत निजता से बहती पारदर्शिता का परिणाम था। वह पूरा संवाद का घेर किसी चक्रवात से कम नहीं था जिसने एक पूरी पीढ़ी को ध्येयवादिता से भर दिया जिसने कितने ही लेखक, विचारक और कार्यकर्ता तैयार किए।

साने गुरुजी ने जिस दौर में लिखा उसमें भारतीय समाज अपने लिए संज्ञा और परिभाषा तैयार कर रहा था। भारतीयता बुनी जा रही थी। उस जमाने में सामाजिक परंपरा, आर्थिक विवशता और सांप्रदायिक अस्मिताओं के उभार से धीरे-धीरे भारत के लौकिक समाज में बच्चे के लिए राजनैतिक और वैयक्तिक स्वाधीनता किसी तिलिस्म से कम नहीं थी। ऐसे में भारत के विभिन्न प्रांतों की लोक कथाओं को अनुवादित कर उसके जरिए गुरुजी ने बच्चों के आत्मबोध और मानवीय संवेदना को व्यापक आधार प्रदान किया। बेबी सरोजा की कहानी त्रिचनापल्ली के कारागृह में एक तमिल दोस्त से सुनी थी जिसे बुनते वक्त उनसे सुनी और कहानियों को जोड़ा गया। वैसे ही उसी जेल में उन्होंने आर्य समाजी कैदियों द्वारा सुनाई भील कन्या शबरी की भक्ति यात्रा की कहानी लिखी। व्हिक्टर ह्यूगो, फ्रांसिसी उपन्यासकार के 'लेसमिजरेबल' पर आधारित कहानी, 'दुःखी' ने पाश्चात्य वाड.मय के कुछ आयामों से परिचय कराया। ये कहानियां जैसे लिखी गईं उससे भारतीयों की भावात्मक एकात्मता प्रदर्शित होती है। यहीं से जन्मी उनकी 'आंतरभारती' की संकल्पना जहां विविधता को मिटाकर एकात्मकता पकाई नहीं गई बल्कि हर संस्कृति के लहजे के साथ वो कथाएं जेलों में सहकारियों को सुनाई गईं ताकि ये स्वाधीनता के सिपाही भारतीयता से रूबरू हो सकें। यही कारण था कि इन्हें पढ़ने के बाद कथा सुनने का आनंद मिलता है। आंतरभारती की मुहिम गुरुजी के बाद चलायी उनकी कहानियों से उत्प्रेरित उड्डापटकी बच्चों ने। (साने गुरुजी ने 'श्याम की मां' के बाद 'धडपडगारी मूले', 'उड्डापटकी बच्चे' नाम

से त्रिखंडात्मक उपन्यास नासिक के कारावास के दौरान लिखा था।)

तिलिस्म का भेद खुलता है तो जिज्ञासाएं खत्म होती हैं और इंतजार होता है नई जादुई दुनिया का। उस इंतजार में बहुत कुछ छूट जाता है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद तो भारतीय समाज निराशा के कितने दौरों से गुजरा है। इस दौरान गुरुजी, उनका श्याम और उनके उड्डापटकी बच्चे भी कहीं छूटते गए। नए तिलिस्म की नई चाबियां और वहां पहुंचने की नई गलियां हैं। मेरे घर में ऐसे उड्डापटकी बच्चों के बूढ़े संस्करण मौजूद होने के बावजूद मैंने और मेरे जैसे अनेक शहरी बच्चों ने श्याम का साथ छोड़ दिया। क्यों? आंतरभारती और साने गुरुजी अखिल भारतीय कथामालाओं की भारत भर में 392 शाखाएं चलीं और गांव-गांव के बच्चों को शिविरों में सुनाई जाने वाली साने गुरुजी की कथाएं जिंदा रहीं, नए श्याम दूढ़ती रहीं। हमें - शहरी बच्चों को लिटिल थिएटर मिला, अजबखाना मिला, वेनिस, मिकी, डोनाल्ड, टॉम और जेरी, बिल्लू, गुलिवर, फास्टर फेणे, जंगल बुक, टिनटिन, नॉडी और अनेक अन्य रशियन दोस्त मिले। श्याम स्वाधीनता के सिपाहियों के कारागृह से निकलकर पहुंचा स्वतंत्र भारत के गांवों में, जहां किताबें बहुत मुश्किल से पहुंचती थीं - पहुंचती हैं।

स्वाधीन भारत में संघर्ष के आयाम बदल गए हैं। पर मानवता के सिपाहियों की मांग समाज में कायम है और रहेगी। साने गुरुजी के साहित्य ने जिस पीढ़ी को भावप्रद ध्येयवादिता दी थी वो बाजार की विवशताओं से ग्रस्त है। बाजार मानवता की परिभाषा नहीं जानता उसके लिए बच्चे उपभोक्ता हैं, मानव संसाधन है जिसे कच्चे माल से परिष्कृत कर बाजार के लिए तैयार पैकेज बनाना है। ऐसे में मानवीय जद्दोजहद और संघर्ष के लिए अवकाश न ही रहे तो अच्छा। सपने ऐसे हों जो बच्चों को आत्मकेंद्रित उपभोक्ता बनने में मददगार रहें। यह नाजुक मामला है, बाजार चिंता से भरा है कि कहीं पैकेज पर खरोंच न आए, बल न पड़े। जैसे-जैसे गांव शहरों में समा लिए जाएंगे वैसे-वैसे सामाजिक भावप्रवणता के निशान भी मिटाए जाएंगे। ऐसे में बाल साहित्य की भूमिका क्या हो - वह बच्चों को सोनपरियों से मिलाए जो अपनी एक नजर से उन्हें कायल बनाएं, हर अप्राप्य उपभोग के लिए उन्हें तैयार करें।

आज श्याम मुझे दुबारा मिला है। मैं अपनी विरासत से पिंड नहीं छुड़ा पाई। मैं जब कोशिश करती हूं स्वाधीनता के तिलिस्म की खोज का श्याम मुझे वहीं मिलता है, कहीं कुछ उड्डापटक करते हुए। ♦

